थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग ॥
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥ ३१ ॥

टीका–जो हिन्दुस्थानके स्थिर (सदैवके) राजा थे वे तो लोभके मार्गमें लगकर थक गये परन्तु पृथ्वीको माता मानकर पूजनेवाले महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ ३१ ॥

सेलां अणी सिनान, धारा तीरथमें धसे ॥
देण धरम रण दान, पुरट सरीर प्रतापसी॥३२॥

टीका–हे महाराणा प्रतापसिंह ! भालोंके अग्रभागोंसे स्नान करते हुए और खड्गोंकी धारारूपी तीर्थमें प्रवेश करके स्वधर्मके लिये युद्धक्षेत्रमें स्वर्णरूपी शरीरका दान देतेहुए तो आपहीको देखे हैं ॥ ३२ ॥

ढिग अकबर दळ ढाण, अग अग झगड़ै आथड़ै ॥
मग मग पाड़ैं माण, पग पग राण प्रतापसी॥३३॥

टीका–अकबरकी सेनाका समूह दौड़कर पर्वत पर्वतपर युद्धमें लड़ता है, उसको जहां जहां मार्गोंमें महाराणा प्रतापसिंह मिलता है वहीं वहीं पैरपैरपर उस सेनाका अभिमान दूर कर देता है ॥ ३३ ॥

दिल्ली हूँत दुरूह, अकबर चढियो एक दम ॥
राण रसिक रणरूह, पलटै केम प्रतापसी॥३४॥

टीका—कठिनाईसे तर्कनामें आने योग्य अकबरने दिल्लीसे एक दम चढाई की, जिसे सुनकर युद्ध रसिक महाराणा प्रतापसिंह अपनी इच्छाको कैसे पलटैं॥ ३४॥

चीत मरण रण चाय, अकबर आधीनी बिना॥
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवैं न प्रतापसी॥३५॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंहकी निरन्तर इच्छा यही है कि युद्धमें मरजाना परन्तु अकबरके अधीन न होना, अतः पराधीनताके दुःखको पाकर महाराणा प्रतापसिंह जीवित रहना नहीं चाहते॥ ३५॥

तुरक हींदवां ताण, अकबर लायो एकठा॥
मेछां आगळ माण, पाण कृपाण प्रतापसी॥३६॥

टीका—जिस समय अकबर सब हिन्दू और मुसलमानोंको इकट्ठे करके मेवाड़पर चढ आया, तो उस समय उन म्लेच्छोंके सामने महाराणा प्रतापसिंहने अपने खड्गके बलसे ही अपना गौरव रक्खा॥ ३६॥

गोहिल कुळ धन गाढ, लेवण अकबर लालची॥
कोडी दै नँहँ काढ पणधर, राण प्रतापसी॥३७॥

टीका—गुहिलके वंशका स्वाधीनतारूपी द्रव्य लेलेनेके लिये बहुत लालच करता है परन्तु अपने मानको धारण करने वाला महाराणा प्रतापसिंह उसमेंसे एक कौड़ी भी निकालकर नहीं देते॥ ३७॥

अकबर मच्छ अयाण, पूंछ उछालण बल़ प्रबल़॥
गोहिल़वत गह राण, पाथोनिधी प्रतापसी॥३८॥

टीका–अकबरका अज्ञान मत्स्य रूप है जो अपनी प्रबल सेनारूपी पूंछको उछालता है परन्तु गुहिलके वंशवाला महाराणा प्रतापसिंह गम्भीर समुद्रके समान हैं सो उस पूंछ उछलनेसे मर्याद नहीं छोड़ेंगे ॥ ३८ ॥

नित गुधल़ावण नीर, कुंभी सम अकबर क्रमैं॥
गोहिल राण गंभीर, पण गुधलै न प्रतापसी३९॥

टीका–अकबररूपी हाथी अन्य सब राजाओंका पानी गुधला देता है अर्थात् राजाओंका मान हरलेताहै परन्तु गुहिलवशंके महाराणा प्रतापसिंहरूपी ऐसा गंभीर समुद्र है कि, जिसका पानी अकबररूपी हाथीसे मैला नहीं होता ॥ ३९ ॥

उड़ै रीठ अण पार, पीठ लगा लाषां पिसण ॥
बेढीगार बकार, पैठो उदियाचल़ पतो ॥ ४० ॥

टीका–अमित शस्त्रोंकी रीठ उड रही है, और लाखों शत्रु पीठपर लगे हुवे हैं उस समय भी बेढ (युद्ध) करनेवाले वीर प्रतापसिंहनें ललकार कर उदयपुरमें प्रवेश किया ॥ ४० ॥

अकबर दल़ अप्रमाण, उदैनयर घेरै अनय ॥
षागां बल़ षूमाण, साहां दल़ण प्रतापसी॥४१॥

टीका–अकबरकी अप्रमाण सेना अनीतिसे उदयपुरको घेर लेती है, परन्तु खुम्माणके वंशवाला महाराणा प्रतापसिंह अपने खड्गके बलसे बादशाहको पीस डालता है ॥ ४१ ॥

देबारी सुरद्वार, अड़ियो अकबरियो असुर ॥
लड़ियो भड़ ललकार, पोळां खोल प्रतापसी॥४२॥

टीका–देवताओंके द्वाररूपी देवारी द्वारपर असुररूपी अकबर अड़ा, परन्तु वहां पर महाराणा प्रतापसिंहने दरवाजे खोलकर वीरोंको ललकार कर युद्ध किया ॥ ४२ ॥

रोकै अकबर राह, लै हिंदू कूकर लषां ॥
बीभरतो बाराह, पाड़ै घणा प्रतापसी ॥ ४३ ॥

टीका–अकबर लक्षों श्वानरूप हिन्दुओंको साथ लेकर मार्ग रोकताहै, परन्तु गर्जना करता हुआ बाराहरूप महाराणा प्रतापसिंह कइयोंको गिरा देताहै ॥ ४३ ॥

देखै अकबर दूर, घेरो दै दुसमण घड़ा ॥
सांगाहर रणसूर, पैर न षिसै प्रतापसी ॥ ४४॥

टीका–अकबरको दूर देखकर दुश्मनोंकी सेना घेरा दे लेतीहै. परन्तु संग्रामसिंहका पौत्र महाराणा प्रतापसिंह ऐसा रणवीरहै कि युद्धमेंसे उसका पैर नहीं डिगता ॥ ४४ ॥

अकबर तड़फै आप, फतै करण च्यारूं तरफ॥
पण राणो परताप, हाथ न चढै हमीरहर ॥४५॥

टीका–अकबर स्वयं चारोंओर विजय करनेके लिये तड़फताहै, परन्तु हम्मीरसिंहका पौत्र महाराणा प्रतापसिंह उसके हाथ नहीं लगता॥ ४५ ॥

अकबर किला अनेक, फतै किया निज फोजसूं॥
अकल चलै नह अेक, पाधर लड़ै प्रतापसी॥४६॥

टीका–अकबरने अपनी फौजसे कई दुर्ग जीत लिये परन्तु महाराणा प्रतापसिंह समभूमिमें लड़तेहैं जिनको विजय करने में उसकी एक भी बुद्धि नहीं चलती ॥ ४६ ॥

दुबिधा अकबर देख, किण बिधसूं घायल करै॥
पमँगा ऊपर पेख, पाखर राण प्रतापसी॥४७॥

टीका–महाराणा प्रतापसिंहके घोड़े पर पाखर देख कर अकबरके मनमें यह द्विविधा उठती है कि उसे घायल क्यों कर करै ॥ ४७ ॥

हिरदै ऊणा होत, सिर धूणा अकबर सदा॥
दिन दूणा दैसोत, पूणा ह्वै न प्रतापसी॥४८॥

टीका—अकबरके दर्बारमें प्रतिदिन राजा द्विगुणित होते जाते हैं, परन्तु प्रतापसिंहके न होनेके कारण वह उनको अपूर्ण माना करता है, जिससे वह सदा अपना सिर धुना करता है, और उसके हृदयमें राजाओंका अपूर्ण भाव बना रहता है ॥ ४८ ॥

कल्पै अकबर काय, गुण पूंगीधर गोड़िया॥
मिणधर छाबड़ मांय, पड़ै न राण प्रतापसी॥४९॥

टीका–अन्य छोटे सर्परूपी राजाओंको वशमें करलेने परभी अकबर अपने मनमें दुःख पाता है क्योंकि मणिधारी सर्पके समान महाराणा प्रतापसिंह उसके छबड़ेमें नहीं पड़ता ॥ ४९ ॥

महि दावण मेवाड़, राड़ चाड़ अकबर रचै ॥
बिषै बिषायत बाड़, प्रथुल पहाड़ प्रतापसी॥५०॥

टीका–मेवाड़की पृथ्वी दबानेके हेतु अकबर युद्ध करता है, परन्तु नुकसान सहन करलेने वाले महाराणा प्रतापसिंहके आडी वडे वडे पहाडोंकी बाड़ लग रही है ॥ ५० ॥

बँधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू ॥
कंद मूळ फळ कैर, पावै राण प्रतापसी ॥५१॥

टीका–अकबरसे वैर हो जानेके कारण उस शत्रुने रसद रोक रक्खी है अतः महाराणा प्रतापसिंहको अब कंद मूल फल और कैर खानेको मिलते हैं भाव यह है कि वह इन वस्तुओंको खाकर भी अकबरके सामने अनम्रही रहना चाहता है ॥५१॥

भागै सागै भाम, अम्रत लागै ऊंमरा ॥
अकबर तळ आराम, पेखै जहर प्रतापसी॥५२॥

टीका–महाराणा प्रतापसिंह अपनी स्त्रीको साथ लिये हुए भगते फिरते हैं, जिनको ऊमरे (उदुंबुर) भी अमृत लगते हैं, परन्तु अकबरकी अधीनतामें सुखपूर्वक रहना उनको विषरूप लगता है ॥ ५२ ॥

अकबर जिसा अनेक, आहव अड़ै अनेक अरि ॥
असली तजै न अेक, पकड़ी टेक प्रतापसी॥५३॥

टीका-युद्धमें अकबरके समान कई रिपु अड़ रहे हैं, परन्तु महाराणा प्रतापसिंहने जो असली टेक पकड़ रक्खी है उसे वे नहीं छोड़ते ॥ ५३ ॥

लंघण कर लंकाल, सादूलो भूषो सुवै ॥
कुलवट छोड़ क्रपाल, पैंड न देत प्रतापसी॥५४॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंह रूपी शार्दूल लंघन करके भूखा सोजाताहै परन्तु अपनी कुलकी रीतिको छोडकर बादशाहके पास पैर भी नहीं देता ॥ ५४ ॥

अकबर मैंगल अच्छ, मांझल दल घूमै मसत॥
पंचानन पल भच्छ, पटकै छड़ा प्रतापसी॥५५॥

टीका-अकबर मस्त हाथीकी तरह मांझल अर्थात् (बीच) के दलमें घूमा करताहै परन्तु महाराणा प्रतापसिंह मांसको खानेवाले सिंहकी तरह छड़ा (हातल) डालताहै ॥ ५५ ॥

दंती दलसूं दूर, अकबर आवै एकलो ॥
चोड़ै षल चकचूर, पलमें करै प्रतापसी ॥५६॥

टीका-हाथियोंके दलसे दूर होकर अकबर अकेलाही आताहै, परन्तु महाराणा प्रतापसिंह एक पल भरमेंही उसके गर्वको चूर्ण कर देगा ॥ ५६ ॥

चितमें गढ चीतोड़, राणारै षटकै रयण ॥
अकबर पुनरो ओड़, पेलै दोड़ प्रतापसी॥५७॥

टीका--रत्नरूपी चित्तोड़का किला महाराणाके चित्तमें खटकताहै सो अब अकबरके पुण्यका अन्त समझना चाहिये कि जिसको महाराणा प्रतापसिंह दौड़कर हठाताहै ॥ ५७ ॥

अकबर करै अफंड, मद प्रचंड मारग लगै ॥
आरज भाण अषंड, प्रभुता राण प्रतापसी॥५८॥

टीका-अकबर मस्त होकर प्रचंड मार्गमें लगाहुआ अफंड कर रहाहै, परन्तु आर्योंका प्रभुत्व अखंड सूर्यरूपी महाराणा प्रतापसिंहके हाथमें है ॥ ५८ ॥

घटसूं ओघट घाट, घसियो अकबारिये घणो ॥
इळ चंनण उप्रवाट, परमळ उठी प्रतापसी ॥

टीका--अकबरने अपने शरीर पर बहुत अवघट घाट घिस रक्खाहै परन्तु महाराणा प्रतापसिंहरूपी चंदनकी परिमल पृथ्वी पर फैल रहीहै ॥ ५९ ॥

अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करै॥
पूगी समँदां पार, पंगी राण प्रतापसी ॥ ६० ॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंहकी कीर्तिको रोकनेके लिये अकबर रातदिन यत्न करताहै, परन्तु वह कीर्ति समुद्रके दूसरे पार पहुंच गई है ॥ ६० ॥

बड़ी बिपत सहबीर, बड़ी क्रीत षाटी बसू ॥
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी॥६१॥

टीका-हे बीर ! तुमनें पृथ्वीपर बहुत विपत्ति सहकर भी बड़ी कीर्ति संपादन की है । हे धर्मकी धुरको धारण करने-

वाले वीर महाराणा प्रतापसिंह! तुम्हारे पुरुषार्थको धन्यवाद है ॥ ६१ ॥

बसुधा किय बिष्यात, समरथ कुल सीसोदियां ॥
राणा जसरी रात, प्रगट्यो भलां प्रतापसी॥६२॥

टीका–शीसोदियोंके वंशकी सामर्थ्यको पृथ्वीभरमें प्रकाशित करनेके लिये हे महाराणा प्रतापसिंह! तुमने यशमयी रात्रिमें भले ही जन्म लिया है ॥ ६२ ॥

जिणरो जस जग मांहिं,जिणरो जग धिन जीवणो
नेड़ो अपजस नांहिं, पणधर धिनो प्रतापसी ॥

टीका–जगत्में उसीका जीना धन्य है जिसका यश संसारमें फैल गया हो, हे दृढ प्रतिज्ञाको धारण करनेवाले! महाराणा प्रतापसिंह! अपयश तुम्हारे समीप है ही नहीं अतः तुम धन्य हो ॥ ६३ ॥

अजरामर धन एह, जस रह जावै जगतमें ॥
दुख सुख दोनूं देह, सुपन समान प्रतापसी ॥

टीका–जगतमें अखंड रहनेके लिये अजर और अमर धन एक यश ही है। हे महाराणा प्रतापसिंह! इस देहके साथ सुःख और दुख दोनों स्वप्नके समान अस्थिर हैं ॥ ६४ ॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा ॥
पुनरासी परताप, सुजस न जासीं सूरमा॥६५॥

टीका–एक दिन स्वयं अकबर भी संसार छोड़कर चला जावेगा, और दिल्ली दूसरोंको प्राप्त होजायगी परन्तु हे धर्मके

समूहरूप वीर महाराणा प्रतापसिंह ! तुम्हारा यश संसारसे कदापि नहीं जावेगा ॥ ६५ ॥

सफल जनम सुदतार, सफल जनमजग सूरमा॥
सफल जोग जग सार, पुरत्रय प्रभा प्रतापसी॥६६॥

टीका-श्रेष्ठ दाताका, श्रेष्ठ वीरका, और श्रेष्ठ योगीका जन्म होनेसे ही संसार सफल माना जाता है । हे महाराणा प्रतापसिंह ! इन तीनोंकी कीर्ति ही तीनों लोकोंमें विस्तृत होती है ॥ ६६ ॥

सारी बात सुजाण, गुण सागर गाहक गुणां॥
आयोड़ो अवसाण, पाँतरियो न प्रतापसी॥६७॥

टीका-हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुम समग्र बातोंको श्रेष्ठ रीतिसे जाननेवाले, गुणोंके समुद्र, और दूसरोंके गुणों के ग्राहक हो, अतः इस हाथमें आयेहुए समयको भूलना नहीं

छत्रधारी छत्र छांह, धरम धाय सोयो धरा ॥
बांह गह्यांरी बांह, परत न तजैं प्रतापसी॥६८॥

टीका-हे छत्रपति महाराणा प्रतापसिंह ! धर्म सब पृथ्वी में भगता हुआ तुम्हारे छत्रकी छायामें आकर सोयाहै अर्थात् धर्मने मेवाड़में आनेपर आपकाही आश्रय पायाहै अतः अपने हाथमें धारण लिये हुए उस धर्मको दृढ प्रतिज्ञा वाले आप कदापि नहीं छोड़ोगे ॥ ६८ ॥

अंतिम येह उपाय, वीसंभर न बिसारिये ॥
साथैं धरम सहाय, पल पल राण प्रतापसी॥६९॥

टीका-हे महाराणा प्रतापसिंह ! अखीरमें यही एक उपाय है कि, परमेश्वरको कदापि नहीं भूलना, क्योंकि प्रत्येक पुलमें धर्मका रक्षक केवल परमात्मा ही है ॥ ६९ ॥

मनरी मनरै मांहि, अकबररै रहगी इकस ॥
नरवर करिये नांहिं, पूरी राण प्रतापसी ॥७०॥

टीका-अकबरकी आंट उसके मनकी मनमें रहगई जिसको हे नरोत्तम महाराणा प्रतापसिंह ! आप पूर्ण कभी मत करना अर्थात् यवनके वशमें मत होना ॥ ७० ॥

अकबरियो हत आस, अंब षास झांषै अधम ॥
नांषै हिये निसास, पास न राण प्रतापसी॥७१॥

टीका-अकबरने आशा रहित होकर आम खासमें नीची दृष्टि कर रक्खी है और महाराणा प्रतापसिंहको सामने न देखकर हृदयसे निःश्वास डालताहै ॥ ७१ ॥

मनमें अकबर मोद, कलमां बिचआरै न कुट॥
सुपनामें सीसोद, पलै न राण प्रतापसी॥७२॥

टीका-अकबरको स्वप्नमें भी महाराणा प्रतापसिंह समीप नहीं दीखता अतः यवनोंके मध्यमें स्थित उसके मनमें हर्ष नहीं है ॥ ७२ ॥

अै जो अकबर काह, सैधँव कुंजर साँवठा ॥
बांसै तो बहताह, पंजर थया प्रतापसी ॥७३॥

टी०–हे महाराणा प्रतापसिंह ! अकबरके घोड़े और हाथियोंका दल तेरे पीछे फिरते फिरते सूखकर अस्थिशेष होगया है ॥ ७३ ॥

चारण बरण चिँतार, कारण लष महमां करी॥
धारण कीजे धारं, परम उदार प्रतापसी॥७४॥

टी०–हे क्षत्रियोंमें परम उदार महाराणा प्रतापसिंह ! क्षत्रियोंका यथार्थ वर्णन करना चारणोंका जातिधर्म है इस कारणको चिंतमन करके मैंने जो आपकी महिमा की है वह धारण करनेके योग्यहै जिसे आप धारण कीजिये ॥७४॥

आभा जगत उदार, भारत बरष भवान भुज॥
आतम सम आधारं, प्रथवी राण प्रतापसी॥७५॥

टी०–उदारपनसे संसारको शोभायमान करनेवाले हे महाराणा प्रतापसिंह ! यह भारतवर्ष आपहीके भुजोंपर स्थित है अतः हे आत्माके तुल्य आधार महाराणा ! पृथ्वीपर एक आपही दृष्टि आते हो ॥ ७५ ॥

कवि प्रारथना कीन, पंडित हूँ न प्रवीण पद ॥
दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव सरण प्रतापसी॥७६॥

टी०–कवि प्रार्थना करता है कि मैं दुरसा नामक आढा गोत्रका दीन चारण न तो पंडित हूं और न चतुर हूं अतः हे प्रभो ! प्रतापसिंह मैं तेरे शरण हूं ॥ ७६ ॥

इति विरुद छिहत्तरी ।

[नोट-"विरुद्धछिहत्तरी" के निर्माता कविवर दुरसाजीका बनाया एक गीत भी प्राप्त हुआ है वह यहां ही नीचे लिखा जाता है-]

गीत (१४०)

आयां दल़ सबल़ सामहो आवै,
रंगिये खग खत्रवाट रतो ।
ओ नरनाह नमो नह आवै,
पतसाहण दरगाह पतो ॥ १ ॥
दाटक अनड़ दण्ड नह दीधो,
दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेल़ न कियो जाय बिच महलां,
कैलपुरे खग मेल़ कियो ॥ २ ॥
कलमां बांग न सुणिये काना,
सुणिये वेद पुराण सुभै ।
अहड़ो सूर मसीत न अरचै,
अरचै देवल़ गाय उभै ॥ ३ ॥
असपत इन्द्र अवनि आह्वड़ियां,
धारा झड़ियां सहै धका ।
घण पड़ियां सांकड़ियां घड़ियां,
ना धीहड़ियां पढी नका ॥ ४ ॥

आखी अणी रहै ऊदावत,

साखी आलम कलम सुणो ।

राणै अकबर वार राखियो,

पातल हिन्दूधरम पणो ॥ ५ ॥

[आढा "दुरसाजी" कृत]

क्षात्रधर्म परायण महाराणा प्रतापसिंह पातसाहके सबल दल अर्थात् अनेकानेक भटोंसे भीषण (डरावनी) चतुरंगिनी सेनाएं आनेपर शत्रुओंके शोणित (खून) से रंगेहुए खड्गको धारण करके उन्हींके सम्मुख आता है ! परन्तु अपने अभिमानको छोड शिर झुकाकर बादशाहके दर्बारमें नहीं आता ॥ १ ॥ वैरियोंको रोकनेके लिये विजयशाली अनड़ (अनम्र) वीरने कभी दण्ड (नजराना) नहीं दिया किन्तु शत्रुओंकी सेनाके सिरोंपर धावाही दिया । कैलपुरा राना महलोंमें जाकर पातसाहसे नहीं मिला प्रत्युत (बल्कि) खड्गोंसे ही मेल किया अर्थात् सर्वदा अकवरकी सेनासे युद्धही करता रहा परन्तु सन्धि नहीं की ॥ २ ॥ ऐसा धीर और वीर महाराणा अपने कानोंसे यवनोंका वांग मारना नहीं सुनता किन्तु परम पावन वेद और पुराणोंके उपदेश श्रवण करता है । कभी मसजिदमें जाकर सिजदा नहीं करता किन्तु देवालय और गाय इन दोनोंकी सेवा करता है ॥ ३ ॥ इन्द्ररूपी पातसाह जब जब कोप करके आडम्बर सहित घटाएं बांधकर

आह्वड़ता है अर्थात् आक्रमण करता है उस समय धारारूपी खड्ग धाराओंकी झड़ीमें धक्का (वेग) सहता है। अनेक बार घणी सांकडी घडी पडनेपर अर्थात् घोर विपत्ति उपस्थित होनेपर भी उसको सहन की और अपनी मर्यादा नहीं छोडी उस वीर महाराणाकी वंशज पुत्रियोंने दिल्ली जाकर नका नहीं पढी ॥ ४ ॥ ऊदावत अर्थात् उदयसिंहका पुत्र महाराणा सर्वदा अग्रगण्य रहा। सब संसार और विशेष कर यवन भी इस बातके साक्षी हैं कि अकबरके विकट समयमें भी महाराणा प्रतापसिंहने हिन्दुओं अर्थात् आर्योंके धर्मको यथावत् पालन किया ॥ ५ ॥

सूरायचजी टापऱ्या चारणकृत–

सोरठे (१४१से १५० तक)

चेल़ा वंस छतीस, गुर घर गहलोतां तणों ॥
राजा राणा रीस, कहतां मत कोई करो ॥ १ ॥

टी०–कवि कहताहै कि क्षत्रियोंके छत्तीस वंश चेले (पक्ष, पलड़े) हैं, जिनमें 'गुहिलोतों (शीसोंदियों) का घर बडा है' यह कहनेमें कोई भी राजराणा क्रोध न करना क्योंकि कविका धर्म सत्य कहनेकाहै ॥ १ ॥

चंपो चीतोड़ाह, पोरस तणों प्रतापसी ॥
सोरभ अकबर साह, अल़ियल़ आभड़ियो नहीं ॥

टी०–महाराणा प्रतापसिंहका पराक्रम चंपेके वृक्षके समान है जिसकी सुगंधिपर अकबर रूपी भ्रमर कभी नहीं आता ॥ २ ॥

माथै मैंगल़ षाग, तैं बाही परतापसी ॥
बांट किया बे भाग, गोटी साबू तांत गत॥३॥

टी०-हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुमनें हाथीके ऊपर खड्ग चलाया, सो तांतसे साबुनकी गोली कट कर दो टुकड़े हो जाती है इस तरह दो टुकड़े कर दिये ॥ ३ ॥

सांग ज सोवरणांह, तैं बाही परतापसी ॥
जो बादण करणांह, पैंरैं प्रगट्टी कुंजरां ॥ ४ ॥

टी०–हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुमने स्वर्णके रूपवाली बरछी चलाई सो बद्दलको फोड़कर सूर्यकी किरणें निकलती हैं, इस प्रकार हाथीके पार निकलगई ॥ ४ ॥

मांझी मोह मराट, पातल राण प्रवाड़ मल ॥
दुजडां किय द्रहवाट, दल़ मैंगल़ दाणव तणा ॥

टी०–अनेक युद्ध जीतनेवाले और मोहको मारने वाले वीर प्रतापसिंहने भालोंसे यवनोंकी सेना और हस्तियोंका नाश कर दिया ॥ ५ ॥

सहनक तणां सुजाण, पारीसा पातल तणा ॥
तैं राहविया राण, एकण हूंता ऊदवत ॥ ६ ॥

टी०--अन्य सुजान (राजा) तो सब 'सहनक' अर्थात् मिट्टीके पात्रमें भोजन करनेवाले होगये (मिट्टीके पात्र यव-

नोंके दस्तरखानमें लगाये जाते थे), परन्तु पत्तलमें परोसा हुआ भोजन तो एक प्रतापसिंहके लियेहीहै, हे उदयसिंहके पुत्र! यह रीति एक तुमनेही रक्खीहै आशय यह है कि सब राजा यवनोंके सहभोजी होगये केवल प्रतापसिंह नहीं हुआ ॥ ६ ॥

अेही भुजे अरीत, तसलीमज हींदू तुरक ॥
माथै निकर मजीत, परसादकै प्रतापसी ॥७॥

टीका-पराक्रममें ऐसी कुरीति होगई है कि हिन्दू यवनोंसे झुक झुककर सलाम करते हैं, केवल महाराणा प्रतापसिंह ही ऐसा है जो मसजिदोंके समूहोंपर देव मन्दिर बनवाता है॥७॥

रोहे पातल राण, जां तसलीम न आदरै ॥
हींदू मुस्सलमाण; अेक नहीं तां दोय है॥ ८ ॥

टीका-विरा हुआ महाराणा प्रतापसिंह जबतक झुककर सलाम करना स्वीकार नहीं करता तबतक हिन्दू और मुसलमानोंको एक नहीं जानना चाहिये भिन्न भिन्न ही हैं ॥ ८ ॥

चोकी चीतोड़ाह, पातल पड़बेसां तणी ॥
रहचेबा राणाह, आयो पण आयो नहीं ॥ ९ ॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंह यवनोंके टुकड़े करनेको तो आया, परन्तु यवनोंकी चोकी देनेको कभी नहीं आया ॥९॥

निगम निवांण तणांह, नागद्रहानरहैरज्युहीं ॥
रावत बट राणाह, पिडँ अणखूट प्रतापसी ॥१०॥

टीका–बेदका १ निपान (जलाशय) अखूट है, और २ नृसिंहका पराक्रम अखूट है, इसी प्रकार महाराणा प्रतापसिंहके शरीरकी वीरता अखूट है ॥ १० ॥

सोरठा (१५१)

गिरपुर देस गमाड़, भमिया पग पग भाखरां॥
मह अँजसै मेवाड़, सह अँजसै सीसोदिया॥१॥

[जोधपुरके महाराज मानसिंहजी कृत]

[नोट–जोधपुरमें जब अनेक उपद्रव होने लगे तब उनको शान्त करनेके लिये अंगरेजी सरकारने अपनी फौज भेजी, उस समय महाराजा मानसिंहजीने अपने सरदारोंसे सलाहकी तो उनने अंगरेजी सरकारको प्रबल बताया और कुचामन ठाकुरने कहा कि बादशाहसे लडना बुरा है, राणाजी लड़े थे सो पैर पैर पर्वतोंमें फिरे थे, इसके उत्तरमें महाराजा साहबने उक्त दोहा फ़रमाया था ॥]

टीका–अपने पर्वत, नगर, और देश गमाकर पैदल ही पर्वतोंमें घूमते रहे पर महाराणाने अपने धर्मकी रक्षा की जिससे आज मेवाड़का देश गर्व करता है और शीसोदिया जाति घमंड करती है ॥ १ ॥

मुक्तक काव्य (१५२ से १५५ तक)

हिन्दू हींदूकार, राणा जे राखत नहीं ।
तो अकबर एकार, पहो सहो करत प्रतापसी॥१॥

हे हिन्दुओंके प्रभु प्रतापसिंह ! जो राणा हिन्दुओंकी कार अर्थात् आर्यधर्मको नहीं रखते तो अकबर सबको एकाकार (एक जातवाले) अर्थात् यवनधर्मावलम्बी बना देता ॥ १ ॥

हिन्दूपति परताप !, पत राखी हिन्दवाणरी।
सहे विपति संताप, सत्य सपथ कर आपणी॥२॥

हे हिन्दूपति प्रतापसिंह ! तैनें हिन्दुओंकी लाज रखली। और अनेक प्रकारकी विपत्तियां और सन्ताप सह करभी अपनी सच्ची सपथ (शपथ) अर्थात् प्रतिज्ञाका पूर्णरूपसे निर्वाह किया ॥ २ ॥

छप्पय।

'गुज्जरेस' गंभीर, नीर नीझर निरझियो,
अति अथाह 'दाऊंद' बुंद बुंदन उब्बरियो।
घाम घूट 'रघुराय जाम' जळधर हरि लिन्हव,
हिन्दू–तुरक–तलाव को न कर्दमवस किन्हव।
कवि 'गंग' अकब्बर अक्क भन (अन)
नृप निपान सब बस करिय।
राना प्रताप रयनाक मझ,
छिन डुब्बत छिन उच्छरिय॥ ३॥

[सुप्रसिद्ध कविवर गंगकृत]

टीका–गुजरातके पतिका जो अत्यन्त गंभीर (ओंडा) नीर अर्थात् पराक्रमजल उसको नीझर निकालकर खाली

करडाला। इसी प्रकार 'दाऊद' का भी जो अथाह जलथा उसे बूंद २ करके निःशेष करदिया। घाम अर्थात् आतपकी घूंटसे (प्रचण्ड तापसे) जो 'जाम' देशका जलधर (मेघ) रूपी राजा रघुराय है उसका भी जल हरलिया। हिन्दू तथा मुसलमानोंका कोनसा तालाव रहा, जिसका पराक्रमरूपी जल खैंचकर उसे कर्दममय नहीं किया और जो अन्य राजा-रूपी निपान थे उन्हें सर्वथा सुखा दिये। कवि गंग कहता है कि अकबररूपी अक्क (अर्क) अर्थात् सूर्यने सब राजा महा-राजाओंको उनका पराक्रम जल सोख २ कर वस कर लिया परन्तु महाराणा प्रतापसिंहरूपी रयनाक अर्थात् रत्नाकर (समुद्र) में वह क्षणमात्रमें डूबता है और क्षणमात्रमें ऊपर उछलता है अर्थात् महाराणा प्रतापसिंहके पराक्रमजलको नहीं सोख सकता प्रत्युत क्षण २ में स्वयं ही डूब २ कर बचता है ॥ ३ ॥

छप्पय।

दल पैलां ऊथपे, तेज ब्रह्म हिं उत्थप्पे,
उत्तर दक्खिण पछिम पूर्व ता पाण पणप्पे।
अन अनेक भुवपत्त वांग श्रवणां सुण रत्ते,
नमि प्रणाम आधीन करैं सेवा बहु भत्ते।
खत्रियाण माण महि उद्धरण एक छत्रि आलम कहै।
गायत्रि मन्त्र गहलोतगुर तिहिं प्रताप शरणै रहै३

टी०-पातसाहने शत्रुओंकी सेनाओंको पराजित (परास्त) करदीं। और ब्रह्मतेजकोभी उखाड़ डाला। उत्तर और दक्षिण एवं पूर्व तथा पश्चिम सब दिशाएं उसके हाथ पड़गई बहुतसे दूसरे भूपति (राजा) यवनोंका बांग मारना सुनकर प्रसन्न होतेहैं। और झुक २ कर सलाम करतेहैं। तथा अकबरके अधीन होकर नानाप्रकारसे उसकी सेवामें तत्परहैं। सर्व संसार कहताहै कि ऐसे समयमें क्षत्रियोंके मानका अर्थात् सच्चे क्षात्रधर्मका उद्धार करनेवाला केवल एक छत्री (राजा) भूमण्डलपर है कि उस गहलोतोंमें गुरु (श्रेष्ठ) प्रतापसिंहके गायत्री मन्त्र शरण है अर्थात् एकमात्र महाराणा प्रतापसिंहही अखण्ड ब्रह्मतेजकी रक्षामें जागरूक (सावधान) है ॥३॥

स्वामी गणेशपुरीजीकृत कवित्त-

(१५६ से १६१ तक)

बाढी बीर हाक हर डाक भुव चाक चढी,
ताक ताक रही हूर छाक चहुँ कोद मैं।
बोलिकै कुबोल हय तोल बहलोलखां पै,
बागो आन कत्ता रान पत्ताको बिनोदमैं॥
टोप कटि टोटी लाल टोपा कटि पीत पट,
सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद मैं।
राहू गोद मंगलकी मंगल गुरूकी गोद,
गुरू गोद चंदकी रु चंद रवि गोद मैं॥१॥

टीका—चारोंओर शूर वीरोंकी हाक बढी, महादेवकी डाक (वाद्यविशेष) वीरोंका उत्साह बढाने लगी, भूमि चक्र पर चढी अर्थात् कंपायमान हुई, और अप्सराएं तृप्त होकर चारोंओर देखने लगीं, ऐसे समयमें अश्वको सम्हाल कर कटुवचन बोलते हुए महाराणा प्रतापसिंहने विनोदमें मुगल-बहलोलखांपर अपना कत्ता (खड्ग) चलाया, जिससे उसका टोपा कटकर नीचेकी लाल टोपी टोपा, पीला कपड़ा, शिर और शरीर तक कटगया, उस समय आनन्दमें क्रमसे ऐसी उपमा प्रतीत हुई कि मानों श्यामवर्ण राहु रक्तवर्ण मंगलकी गोदमें, मंगल पीतवर्ण बृहस्पतिकी गोदमें, बृहस्पति स्वच्छ चंद्रमाकी गोदमें और चंद्रमा ओजस्वी सूर्यकी गोदमें हों

[नोट—इस वृत्तका एक उत्तम सोरठा भी सुना जाता है, वह यह है—

खळ बहलोल खपार, पेल दळ लाखां प्रसण,
अस चेटक उलटार, पहुँतो उदयाचल पतो ॥

लाखों शत्रुओंके दळ अर्थात् सेनाको छिन्न भिन्न कर और दुष्ट बहलोलखांको मारकर विजयी वीर महाराणा प्रतापसिंह अपने चेटक घोडेको वापिस लौटाकर उदयपुर पहुंचे ॥]

दावा अरु धावा दुर्गदासको दिखावा जग,
रान पास आवा साथ पावा सूर सत्तासो ।
जावा अमरेसको बखानै सब देस पै न,
आवा बन्यौ मारि मरयो मीर रोस रत्ता सो॥

आवा शिवराजको न जावा बन्यौ जैसी विधि,
यहै म्लेच्छ मुच्छ काट लावा मोद मत्तासो ॥
दावा रान पत्ता सो न धावा रान पत्ता सो न,
जावा रान पत्ता सो न आवा रान पत्ता सो ॥२॥

टी०–जगत्में दावा करना व धावा देना दुर्गदासका प्रसिद्ध है, परन्तु बादशाह स्वयं सेनाके साथ महाराणाके ही पास आया। ऐसे ही जाना अमरसिंहका विख्यात है पर वह वहां ही काम आये और निज वीरतासे आ न सके॥ इसी तरह आना शिवाजीका प्रख्यात है परन्तु उनका आना वीरतासे नहीं हुआ, और यह महाराणा प्रसन्नतासे ही बादशाहकी मूछतक काट लाया अतः महाराणा प्रतापसिंहके समान दावा, धावा, जाना और आना किसीका भी नहीं हुआ ॥२॥

[नोट–इस कवित्तमें बादशाहका स्वयं सेनाके साथ आकर महाराणासे युद्ध करनेका और महाराणाका उसकी मूछ काट-लेनेका इतिहास कविकी कल्पनामात्र है क्योंकि लोक कथनसे तो यह बात सुनी गई है परन्तु इतिहासोंसे यह बात साबित नहीं है। महाराणा प्रतापसिंह और अकबर कभी शामिल नहीं हुए थे.]

कोल खान खानाके प्रतापसिंह रानापर,
वाना हिंदवानाको सुहाना तो गयारीतैं।
दाहके करन पातसाहके उराहनेपै,

चाहके मरन रनराहके जयारी तैं।
पानि देकैं मुच्छन कृपान पुनि पानि देकैं,
पानलौं उडावैं म्लेच्छ बीरता बयारीतैं।
सूरनके हाके होत कूरनके साके होत,
हूरन इलाके होत तूरन तयारीतैं॥ ३॥

टी०-खानखानाके वचन हैं कि हिन्दुस्थानका बाना महाराणा प्रतापसिंह पर सिंहके समान अच्छा लगताहै। जलन पैदा करनेवाले बादशाहके रहने पर युद्धके मार्गमें मरना बिचार कर जीतके लिये शत्रुओंके अर्थ मूंछोंपर हाथ देकर और फिर तलवार पर हाथ देकर वीरतारूपी पवनसे यवनोंको पानके समान उडादेताहै। जहां शूरोंके हाके हो रहे हैं कायरोंके साके हो रहेहैं, अप्सराओंके वीरोंको वरनेके परगने हो रहेहैं, और नगारे बज रहे हैं॥ ३॥

गेर गेर लाज सब राज रहैं पैर परे,
जेर भए फेर सुर मेरके सिखर जात।
'एक लिंग' बासमें बिलासको निवास जानि,
राधिका रमन चहैं रमन रिखारि जात।
आछी आछी मीरनीके आखिरी उजीरनीके,
चीर नीके चीर दृग नीर जी निखारि जात।

बेर बेर घेर उदैनेरकों असुर अरैं,
हेर हेर परैं पत्ता बेरसे बिखरि जात ॥ ४ ॥

टी०-सब राजा लाज छोड़कर पैरों पड़े रहते हैं और अधीन होगये हैं, देवता फिर मेरुके शिखरपर जाते हैं। एकलिंगके वासमें (मेवाड़में) विलासका निवास जानकर श्रीकृष्ण रमण करना चाहते हैं। अच्छी २ मीरों और वजीरोंकी स्त्रियोंके आंखोंके आंसू और जीव उनके अच्छे २ चीरों (वस्त्रों) को चीरकर निकल जाते हैं। घड़ी २ यवनलोग उदयपुरको घेरनेको अड़ते हैं जिनको हेर हेर कर प्रतापसिंह उनपर पड़ता है तो वे बेरकी नांईं बिखर जाते हैं॥४॥

हेरि हेरि हारि हिय हहरि हरिननैनी,
हुरम कहत हठ तिय नाह नत्ता है ॥
दीनसों अदीन ह्वैके तेरे नेह पीन ह्वैकें,
मीन जल लीन ह्वैकें खीन ह्वै न खत्ता है ॥
वब्बरको नातिय अकब्बर सु अब्बरसे,
मेल्हे फरमान मेल कीबे मोद मत्ता है ॥
बालसो रु तालसो पसारिनके जाल जैसो,
ज्वाल जैसो काल जैसो पत्ता रन रत्ता है॥५॥

टी०-बादशाहकी, मृगाक्षी स्त्रियां पराजयको देख देख कर घबराकर हठसे कहती हैं कि अपना स्त्री पुरुषका संबंध है, और अपने धर्मको छोड़कर तेरे स्नेहमें पुष्ट होनेके कारण हमने अन्य निकृष्ट धर्मको अंगीकार किया है, और पानीमें

मच्छीकी तरंहं लीन होकर दुर्बल होरहीहैं, ऐसा हमारा कोई अपराध नहीं है। बाबरका पौत्र अकवर अब्बर (जौहर) की तरंहं प्रसन्न होकर सन्धि करनेका फरमान भेजता है, परन्तु महाराणा प्रतापसिंह बालक, ताला, पसारियोंके समूह अग्निकी ज्वाला और काल (यम) की भांति अपने रणरूप कर्तव्योंमें अत्यन्त आसक्त है ॥ ५ ॥

छप्पय ।

नच्चन बेर निहारि,
पुत्त कहि चारु प्यार चहि ॥
उहि छिन उमँगि उडात,
कंध धर हाथ भ्रार्त कहि ॥
वग्ग उठत रन रुप्पि,
बप्प कहि अप्प विरुद वर ॥
तात भ्रात सुत सोक,
गजब त्रिक परिग अरिग गर ॥
कट्टिग न पैर कट्टिग यकृत,
कट्टिग मान निसान घन ॥
हय मरिग नहिं न चेटक अहह,
मरिग रान पत्ता सु मन ॥ ६ ॥

टी०-जिस अश्वको नाचता हुआ देखकर पुत्र पुत्र कह कर प्यार किया, उसही समय प्रसन्न होकर जब उसे उडाया तो कंधेपर हाथ धरकर भाई भाई कहा और युद्धमें डट कर उसे बाग उठाकर अपना बाप बाप कहकर विरुदाया उस अश्वके मरनेसे महाराणा प्रतापसिंहके गले मानो पुत्र भ्राता और पिताका शोक पड़ गया। खेदका विषयहै कि उस घोड़ेका पैर नहीं कटा किन्तु मानका दृढ़ निसान कट गया हा!!! चेटक अश्व नहीं मरा किन्तु महाराणा प्रताप-सिंहका मन मर गया ॥ ६ ॥

कवित्त (१६२ व १६३)

अज्ज धर्म रच्छक इतै रु जवनिष्ट उतै,
घाट हल्दी रंन भ्रमावैं भट भालोंकों,
बीर दोरदण्डन उदग्ग मच्डलग्गनतैं,
सब्बुन ज्यौं तंति चीरे देत गजढालोंकों।
प्रहरन ताप कान्दसीक प्रतिपच्छी बने,
पदग्रस्त बुल्लत विलोकि रक्त नालोंकों।
साक पानेवाले रान पत्ताकी कृपान पिक्खि,
लगत जुलाबसी पुलाव खानेवालोंकों ॥१॥
म्लेच्छनकों नमिबो अयोग्य लखि खाद्य गने,
समयानुकूल कन्द मूल फल पत्ताकों.

राज्य–द्रंग–दुर्ग–देश–वैभवज सुःख हेय,
राखी दृढ वंशपरिपाटीकी प्रभत्ताकों ।
खग्ग बल विस्तारि अकब्बरसे शत्रु अग्ग,
इकल निबाह्यौ जिहं वेदधर्म नत्ताकों.
आसमुद्र उर्विवासी अज्ज कृतमन्य देत,
धन्यवाद वीर अग्रगण्य रान पत्ताकों ॥ २ ॥

['हणूत्या' ग्रामनिवासी बारहठबालावक्स पालावत रचित]

[नोट–पहिला कवित्त हलदी घाटपर जो युद्ध हुआ था, उसहीके वर्णनका है और दूसरे कवित्तसे कविने महाराणा साहबको धन्यवाद दिया है ।]

टी०–इधर तो आर्यधर्मके रक्षक महाराणा श्रीप्रतापसिंह हैं और उधर यवनोंका इष्ट अर्थात् उनके धर्मका पक्षपाती अकबर है । हलदी घाटपर रण मंडा है, जहां भट (वीर) भालोंको घुमा रहे हैं । वीरोंके भुजदण्ड उदग्र अर्थात् तीखे मण्डलग्ग (मण्डलाग्र) अर्थात् खड्गोंसे गढालोंको चीर रहे हैं जैसे कि तांत साबुनको चीर डालती है । महाराणाके खड्गकी तापसे शत्रु कान्दसीक (भयद्रुत) बनगये हैं अर्थात् अपना २ प्राण बचा २ कर भागे हैं, और लोहूके प्रवाह देख भयसे त्रस्त होकर पदग्रस्त अर्थात् स्खलित वचन बोलते हैं, अहो शाकमात्रसे निर्वाह करनेवाले राणा प्रतापसिंहकी तलवार देखकर पुलाव खानेवालोंको जुलाबसा लगा है ॥ १ ॥

जिस महाराणाने म्लेच्छोंके आगे नमना सर्वथा अनुचित जानकर समय २ पर प्राप्त हुए कन्द, मूल, फल और पत्तों (शाक) कोही खाने योग्य गिने। और राज्य पुर, दुर्ग देश और वैभवके सुखको तुच्छ समझा। अपनी वंशपरम्पराकी कीर्तिको यथावत् बनी रक्खी। तथा जिस बलशालीने अकबर जैसे (प्रबल) शत्रुके आगे खड्गके बलसे वेदधर्मका सम्बन्ध निबाहा। उस वीराग्रगण्य महाराणा प्रतापसिंहको समुद्र पर्य्यन्तके भूमण्डलनिवासी आर्य जन कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देते हैं ॥ २ ॥

कवित्त (१६४)

अखिल जहान यों बखानतहै आननतैं,
मेदपाट मंडन प्रताप बल बंडकों।
पाक साक पचत रसोईमें तथापि तेरो,
पिंड नां तजत रजपूतीके घमंडकों।
कवि 'हिंगलाज' नव खण्डनमें नाना विधि,
पण्डित पढत पावै सुजस अखण्डकों।
जापै भरि दण्ड नृप झुंडनके मुण्ड झुकैं,
तापैं भुजदण्ड तेरे मापैं ब्रह्मण्डको ॥

[सेवापुरग्राम निवासी हिंगलाजदान कविया कृत]

टीका—सारा संसार मेवाड़के भूषण और बलवण्ड अर्थात् बड़े शूरवीर महाराणा प्रतापसिंहके प्रतापको इस प्रकार मुखसें

बखान करता है कि, हे राणा! यद्यपि तेरी रसोईमें शाकही पाक बनता है अर्थात् ऐसी शोचनीय अवस्था है तथापि तेरा तन रजपूतीके घमंडको नहीं छोडता कवि हिंगलाज कहता है कि नवों खण्डोंमें पण्डित जन तेरे अखण्ड सुजस गाते हैं। जिस बादशाहके आगे नजराना देकर अन्य नृप-समूह सिर झुकाते हैं, अर्थात् दूसरे राजा जिसके सामने अत्यन्त नम्रभावसे सलाम करते हैं, उस यवनसम्राट् पर तेरे भुजदण्ड ब्रह्माण्डको मापते हैं अर्थात् सर्वदा खड्ग धारण करके शत्रुका संहार करनेको उद्यत रहते हैं॥

गीत (१६५) मरसिया।

सामो आवियो सुरसाथ सहेतो,
ऊंच बहा ऊदाणा॥
अकबर साह सरस अणमिलियां,
राम कहै मिल राणा॥ १॥
प्रम गुर कहै पधारो पातल,
प्राझा करण प्रवाड़ा॥
हेवै सरस अमलिया हींदू,
मोसूं मिल मेवाड़ा॥ २॥
अेकंकार ज रहियो अलगो,
अकबर सरस अनैसो॥

विसन भणै रुद्र ब्रह्म बिचाळै,
बीजा सांगण बैसौ ॥ ३ ॥

[आढा शाखाके चारण दुरसाजी कृत]

टीका–ऊंची खैंचनेवाले उदयसिंहके पुत्र महाराणा प्रतापसिंहके सन्मुख देवताओं सहित विष्णु भगवान्‌ने आकर कहा कि अकबरसे स्नेहपूर्वक नहीं मिलनेके कारण हे मेवाड़के राजा प्रतापसिंह! अब मुझसे मिल ॥ १ ॥ परमेश्वर कहते हैं कि हे बहुत युद्ध करनेवाले महाराणा प्रतापसिंह! पधारिये और यवनोंसे स्नेहपूर्वक नहीं मिलनेके कारण मुझसे मिलिये ॥ २ ॥ तुम हिन्दू और यवनोंका धर्म एक करनेमें दूर रहे हो, और अकबरसे अपरिचित रहे हो, इसलिये हे दूसरे संग्रामसिंहरूपी महाराणा प्रतापसिंह! शिव और ब्रह्माके बीचमें बैठो ॥ ३ ॥

छप्पय (१६६)

अस लैगो अणदाग,
पाघ लैगो अणनामी ॥
गो आडा गवड़ाय,
जिको बहतो धुर बामी ॥
नवरोजै नह गयो,
न गो आतसां नवल्ली ॥

न गो झरोखाँ हेठ,
　　जेठ दुनियाण दहल्ली ॥
गहलोत राण जीती गयो,
　　दसण मूंद रसणा डसी ॥
नीसास मूक भरिया नयण,
　　तो मृत शाह प्रतापसी ॥ १ ॥

[आढा दुरसाजी कृत]

टीका—हेमहाराणा प्रतापसिंह ! तेरी मृत्यु होनेपर बादशाहने रसना डसी, और निःश्वासके साथ नेत्र भरलिये अर्थात् आपके कालवश होनेसे बादशाहने शोक प्रकट किया कि हा ! गहलोत राणा जीत गया, वह अपने अश्वको बिना दागही लेगया अर्थात् उसके घोड़ेके शाही दाग नहीं लगसका, हा ! वह अपनी पाघको अणनामी (बिना नमायें) ही लेगया अर्थात् मेरे दर्बारमें आकर सलामी नहीं हुआ, जो सदा वामभावसेही धुरको धारण करताथा अर्थात् बडा प्रबल शत्रु था वह गया, हा ! वह वीर कभी नवरोजे नहीं गया और उसने कभी आतससंबन्धी क्लेश नहीं सहा । वह दुनियांका ज्येष्ठ अर्थात् संसारमें अत्यन्त उन्नत प्रतिष्ठाके शिखर पर आरूढ हुआ महाराणा कभी दिल्लीके झरोखोंके नीचे नहीं आया अर्थात् सलामी नहीं हुआ और अपने मानको यथावत् निभागया (अभिप्राय यह है कि मैं अनेक प्रयत्न करके

भी महाराणा प्रतापसिंहपर अपना प्रभुत्व नहीं कर सका इसलिये मेरे प्रतापमें यह एक बड़ीभारी न्यूनता रह गई इसहीका बड़ा सोचहै) ॥ १ ॥

[**नोट**—परमेश्वरकी अपार माया है कि जो वीर महाराणा प्रतापसिंह बादशाही फौजके साथ हजारों वीरोंमें घोड़ा उठाकर निकल गये। जिनने हजारहों वीरोंको अपनी तरवारसे रण शय्यामें सुला दिया, पर उनके एकभी घाव न लगा। उन्हीं वीर महाराणाका एक सिंहकी शिकारमें कमान चढाकर अङ्ग मोड़ते समय आंत टूटकर देहान्त होगया।]

महाराणा श्रीअमरसिंहजी।

महाराणा श्रीअमरसिंहजी वि० सं० १६५३ में गद्दी बिराजे और सत्रह लड़ाइयोंमें बादशाह जहांगीरकी फौजके साथ युद्ध करके विजय पाया। इन लगातार लड़ाइयोंमें मेवाड़के प्रायः समस्त सरदार जो वीर और बडी आयुवाले थे काम आगये पर फिर भी ये लड़तेही रहे। सुना जाता है कि अन्तमें जब फौज न रही तब मेवाड़के जो सर्दार बाकी बचे थे उनने आग्रह किया जिससे मजबूर होकर बादशाह जहांगीरके साथ सन्धि करलेनी पड़ी, जिसमें सबसे मुख्य शर्त एक यह थी कि महाराणा बादशाहके पास दिल्ली नहीं जावेंगे, या तो उनके महाराजकुमार जावेंगे या पोते जायाकरेंगे अतएव इन्होंने महराजकुमार कर्णसिंहको अजमेर भेजा। बादशाहनें भी यह गनीमत समझ कर इसको अङ्गीकार

कर लिया । महाराणाने उसी दिनसे उदास होकर राज काज छोड़कर एकान्तवास करलिया और जबतक जीते रहे अमरमहलसे बाहर नहीं निकले । इन महाराणाका देहान्त सं. १६७६ में हुआ था ॥

गीत (१६७)

अकबर दल़ आल साबल़ां ओषण,
जूझ कल़ह माते रण जंग ॥
रवंदां तणैं रगतसूं राणै,
राता किया पहाड़ां रंग ॥
रँग हैंवर नर चाढे बेगर,
कुंजर घाण मथाण कर ॥
मेवाड़ां❋ डूंगर मेवाड़ा,
आछै रँग रंगिया अमर ॥ २ ॥
असुरां घाट माट ऊकाल़े,
घाट घाट पतसाह घड़ ॥
सांग कल़ोधर किया सावरत,
आपाणां जूना अनड़ ॥ ३ ॥
पग पग पाड़ राड़ कैलपुरा,

❋ "आहाडै डूंगर आपाणा" ऐसा पाठान्तरभी सुनाजाताहै ।

रँगिया चोळ मजीठां रोद ॥
पातलतणैं पुराणा परबत,
सिणगारिया बडै सीसोद ॥ ४ ॥
मांसांचरां धपाड़े मांसां,
बांसां करे अमावड़ बाड ॥
मावै नहीं पहाड़ां माहे,
हाथ्यांरा दांतूसळ हाड ॥ ५ ॥

टीका—उस बडे युद्धमें मस्त होकर जूझते हुए राणानें अकबरकी फौज जो आलके समान थी उसे भाले रूपी सावलसे ओखणी (छड़ी) और उन १ तुरकोंके लोहूसे पहाडोंको लाल रंग दिये ॥ १ ॥ बचे हुए घोड़े हाथी और मनुष्योंके समूहको घेरकर बेगर (रंगनेका मसाला) के समान मथकर मेवाड़पति अमरसिंहने मेवाड़के पर्वतोंको अच्छी तरहं रंग दिये ॥ २ ॥ महाराणाने बादशाहकी फोजके यवनोंको पर्वतोंके घाटेरूपी मटकोंमें उकालकर उनके रक्तरूपी जलसे अपने पुराने पर्वतोंको रंगीन कर दिये ॥ ३ ॥ कैलपुरे ने पैंड २ में राड करके यवनोंके रक्तसे मजीठसे चोल रंगदिये। प्रतापसिंहके पुत्र बडे सीसोदियाने अपने पुराने पर्वतोंका श्रृंगार कर दिया ॥ ४ ॥ शत्रुओंकी पीठमें बहुत घाव लगाकर २ मांसभक्षी जानवरोंको तृप्त करा दिये और पहाड़ोंमें नहीं मावे, ऐसे हाथियोंके दांत तथा हड्डियोंके ढेर लगादिये ॥ ५ ॥

गीत (१६८)

दरजी अमरेस बणाई दोमझ,
तरकी सुजड़ कूंत षग तीर ॥
रोम रोम षीलाणो रावत,
सिध कंथा ताहरो सरीर ॥ १ ॥
किलमांपत भेटे कारीगर,
कारी घाव निहाव कर ॥
वाळ वाळ जुड़ियो थारो बप,
पेवँद आयसतणी पर ॥ २ ॥
पड़ उसताज आहणे असपत,
दुजड़े देतो खळां दुष ॥
केस केस सँधियो कैलपुरा,
रावळ अंबरतणी रुष ॥ ३ ॥
सुत परताप धगां भर सारां,
इळा उजीण दुकान इम ॥
काया अमर गूदड़ी कीधी,
जगपत गोरषनाथ जिम ॥ ४ ॥

टीका–महाराणा अमरसिंहने अपने शरीरको कंथा (गुदड़ी) रूप बनाया जिसमें कटारी, भाला, खड्ग और तीरकी तरकी (फटे हुए वस्त्रपर लगानेके लिये अन्य वस्त्रका टुकड़ा)

लगाई, इसलिये हे वीर ! तुम्हारा शरीर सिद्धोंकी कंथाके समान बहुत तरकीवाला है ॥ १ ॥ यवनोंके पतिसे मिलकर जो निरन्तर घाव लगे वही उक्त दुलाईमें (कंथामें) कारी (तरकी) है, जिससे तुम्हारा शरीर बाल बाल जुड़ रहा है, और आयसजी (सिद्ध) की भांति उसमें थेगली (तरकी) हैं ॥ २ ॥ युद्धमें पड़कर बादशाहोंको मारे और भालेंसे दुष्टोंको दुःख दिया इसही कारणसे हे कैलपुरा ! रावळबाबाके वस्त्रकी भांति तेरा शरीर रोम रोम जुड़ रहा है ॥ ३ ॥ हे महाराणा प्रतापसिंहके पुत्र अमरसिंह ! उज्जैनकी भूमिरूप दुकानमें तैंनें अपने शरीरको तागे भरकर गोरखनाथकी गुदड़ी के समान बहुत तरकियों वाला करदिया ॥ ४ ॥

गीत (१६९)

अह माथै रांग आभ लग ऊंचो,
नव षंडे जस झालर नाद ॥
रोप्या भला रायपुर राणा,
पड़ै न सासणतणां प्रसाद ॥ १ ॥
मेछां अगम सुजसमै मूरत,
गुण पूजाकर पूज गण ॥
आगाहट रोपे इळ ऊपर,
अमर तणां देवळ अमर ॥ २ ॥

पाषाणां चुणिया सह पड़सी,
अधका दिन जातां अन मंध ॥
बडा बडा गजबंध बषाणैं,
बापाहरा तणां धजबंध ॥ ३ ॥
अवचल मँडप करे आगाहट,
सुर जिम थापे कवेसुर ॥
मुंह मांगियो सु दीधो मौनें,
पता समोभ्रम रायपुर ॥ ४ ॥

[दुरसाजी आढा कृत १]

[**नोट**–महाराणा अमरसिंहजीने कविवर " दुरसा " जी आढाको " रायपुर " नामका एक ग्राम प्रदान किया था, जिसपर दुरसाजीने दो गीत कहे एक यह और दूसरा इसके आगेका। आगेवाले गीतकी कल्पना बड़ी अनूठी है। उस गीतमें कविने इस प्रकार रचना की है कि जिससे महाराणाका अतुल प्रताप, प्रशंसनीय पराक्रम और दक्षिण्य आदि नायकगुण व्यञ्जना द्वारा प्रतीत होते हैं जिनसे महाराणाका परम उत्कर्ष व्यङ्ग्य होता है।]

टीका–हे राणा तैनें रायपुरनामक ग्रामका १ उदक रूपी २ मन्दिर अच्छा बनाया है कि जिसकी नींव तो शेषके शिरपर है और आकाशतक ऊंचा है और नवों खंडोंमें जिसकी यशरूपी झालर बजती है वह मन्दिर पडेगा नहीं अर्थात्

चिरस्थायी रहेगा ॥ १ ॥ महाराणा अमरसिंहने पृथ्वीपर उदकरूपी अमर मन्दिर बनाया है जिसमें यवनोंको अगम्य, ऐसे सुयशकी मूर्ति स्थापितकी है और जिसकी पूजा करने वाले गुणरूप पुजारी हैं ॥ २ ॥ पाषाणोंसे चुने हुए अन्य सब मन्दिर अधिक समय बीतनेपर गिर जायँगे, परन्तु बापारावलके वंशवाले महाराणा अमरसिंहके मन्दिरकी बड़े बड़े राजा लोग प्रशंसा करेंगे ॥ ३ ॥ हे प्रतापसिंहके सदृश महाराणा अमरसिंह ! मैंनें रायपुर अपने मुंहसे मांगा सोही तैंनें मुझे देदिया सो तैंनें ५ उदकरूपी ४ स्थायी मन्दिर बनाया और उसमें कवीश्वररूपी देवताकी प्रतिष्ठा की ॥ ४ ॥

गीत (१७०)

अणदीठा जिके गाविया अधपत,
अणदीधां गाया अवर ॥
मांगूंहूं इतरो मेवाड़ा,
एकण तो तीरे अमर ॥ १ ॥
गाया म्हैं मांगिया पखै गुण,
गढपति गामांपती गणो ॥
मोटा षत्री द्रवो मेवाड़ा,
राण षत्रीवँसतणो रणो ॥ २ ॥
राव रावत रावळ के राजा,
राणाहरै राखियो ऋण ॥

तूं हिंदवाण धणी पातलतण,
तो गोढां मांगजे तिण ॥ ३ ॥
ऋण राखियो घणो राजाने,
मिऴसां न करै मूझ मन ॥
कर ऊरण कूंभेण कऴोधर,
राण अढारह रायहर ॥ ४ ॥
सोह सीलणो कियो सीसोदै,
सूर सोम ते साखि सुर ॥
छत्रियां कुऴ लहणो छोड़वियो,
राण दियंतै रायपुर ॥ ५ ॥

[आढा दुरसाजी कृत (२)]

टीका–हे मेवाड़ा ! मैंने जिन अधिपतियों (राजाओं) को नहीं देखा, उनका भी सुजस गाया । और जिन राजाओंसे कभी कुछभी नहीं पाया उनकाभी काव्य बनाया । परन्तु हे अमरसिंह ! मैं तेरे पाससे केवल इतना ही मांगताहूं ॥ १ ॥ कि तुझपर जो क्षत्रियवंशका ऋण है अर्थात् 'महाराणाने बादशाहकी सेनामें संयुक्त (सामिल) होकर आये हुए जिन राजाओंको मारेहैं उनकी ओरसे किसीने भी महाराणासे बदला लेनेका दावा नहीं किया, क्योंकि महाराणा प्रचण्ड पराक्रमशाली होनेके कारण किसीके वध्य (मारनेयोग्य) नहीं हुए और न तुमको कोई मार सकता निदान इस प्रकारसे

जो कई राजाओंका रजपूतीका ऋण तुम पर है' उसे हे बड़े क्षत्रिय मेवाड़ा राणा! द्रवो अर्थात् देवो। मैंने गुणोंका पक्ष लेकर अनेक ग्राम पति और गढ़ पतियोंका जस गायाहै और याचना की है ॥ २ ॥ परन्तु तू हिन्दुओंका धणी है और महाराणा प्रतापसिंहका सुयोग्य पुत्रहै (इससे यह अभिप्रायहै कि, यह क्षत्रियोंका ऋण तेरे पिताका किया हुआहै इस लिये इस ऋणको चुकादेना तेरा धर्महै) इस कारण कई राव, रावत, रावल और राजाओंने जो राणोंपर अपना ऋण रक्खाहै उसे तेरे पाससे मांगना चाहिये ॥ ३ ॥ महाराणा प्रतापसिंहने राजाओंके ऋणको इतना बढा लिया था कि उसके चुकजानेके लिये मेरा मन साक्षी नहीं देताथा, परन्तु हे महाराणा कुम्भाकी कलाको धारण करनेवाले राणा अमरसिंह! तू अठारह राजाओंके ऋणको देकर उऋण होगया ॥ ४ ॥ सीसोदियाने सब ऋणका सीलणा (फैसला) अर्थात् सब चुकाकर उद्धार करदिया। उसके देवता सूर्य और चन्द्रमा साक्षीहैं। हे महाराणा! मुझे "रायपुर" ग्रामका दान करके तुमने क्षत्रियोंके कुलका लहणा (ऋण) छुड़ालिया अर्थात् अब उस ऋणका दावा तुमसे कोई नहीं करेगा आपने उसी ऋणमें मुझे "रायपुर" देकर फैसला करालिया ॥ ५ ॥

गीत (१७१)

सांगण दूसरा अभनमा उदैसी,
अमरा अंबर अड़ियो ॥

दै आसीस तनैं दसरावो,
नवरोजै नां बड़ियो ॥ १ ॥
चरचै चँनण तूझ चीतोड़ा,
पुहपमाल़ पहरावै ॥
दासपणों न करै दीवाली,
ईद तणैं घर आवै ॥ २ ॥
पातलरा छल़ जाग पतावत,
अरसीरा छल़ आगै ॥
यल़ जसरात जनमियो अमरा,
जमांरात नह जागै ॥ ३ ॥
चित्रांगढ हद सोह चाढवां,
सोह हमीर सरीषां ॥
लाषाहरा नकूं लेषवियो,
तथ मेल़े तारीषां ॥ ४ ॥

टीका–हे दूसरे संग्रामसिंह और दूसरे उदयसिंहरूपी अमरसिंह ! तुझे आर्योंका त्योंहार दसहरा आशीर्वाद देता है कि जो तेरेही प्रतापसे नवरोजे नहीं पहुंचा ॥ १ ॥ हे महाराणा ! दीपमालिका तुझे चन्दनसे चरचती और पुष्पमाला पहिनाती है कि जिसने तेरे प्रतापसे ईदके (यवनोंके) घरमें जाकर दासपन नहीं किया ॥ २ ॥ हे अमरसिंह !

तू यशकी रात जनमा था अतः महाराणा प्रतापसिंह और अरिसिंहके १ यशके लिये तैंनें भी जुम्मारातमें जाकर जागरण नहीं किया ॥ ३ ॥ हे लाखाके वंशवाले महाराणा अमरसिंह तैंनें चित्तोड़की शोभाको और हम्मीरसिंह सरीखे पुरुषाओंकी शोभाको हदतक बढानेके लिये तिथिके साथ यवनोंकी तारीखें लगाकर कभी हिसाब नहीं किया ॥ ४ ॥

दोहा(१७२)

कमधज हाडा कूरमा, महलां मोज करंत ॥
कहजे षानाषाननें, बनचर हुवा फिरंत ॥ १ ॥

टी०–राठोड़, हाड़ा और कछवाहे तो महलोंमें आनन्द भोगते हैं परन्तु खानखानाको कहदेना कि हम जंगलीकी तरहं बनोंमें घूमा करतेहैं ॥

दोहा (१७३)

चहुवाणां दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ॥
राण पयंपै षाननैं, वो दिन दीसै अज्ज ॥ २ ॥

टीका–महाराणा अमरसिंह खानखानाको कहतेहैं कि जिस दिनके पलटनेसे चहुवाणोंसे दिल्ली और राठोडोंसे कन्नोज चला गया वही दिन आज हमको हमारे लिये भी दीखता है ॥

[नोट–उपरोक्त दोनो दोहे महाराणा अमरसिंहजीने नवाब खान खानाको लिखे थे जिसके उत्तर में नवाब खान खानानें निम्न लिखित दोहा लिख भेजा था.]

दोहा (१७४)

धर रहसी रहसी धरम, षप जासी षुरसाण ॥
अमर बिसंभर ऊपरै, राष नहच्चो राण ॥१॥

टीका–तुम्हारी पृथ्वी तुम्हारे ही रहेगी और धर्म भी तुम्हारा यथावत् बना रहेगा एवं यवन नाश पाजावेंगे सो हे महाराणा ! उस अविनाशी विश्वंभर पर विश्वास रक्खो ॥

महाराणा श्रीकर्णसिंहजी ।

उक्त महाराणा वि. सं. १६७६ में गादी बिराजे इनके समयमें दिल्लीसे कोई युद्ध न हुआ अतः इनका शासनसमय बहुत शान्तिसे बीता । जहांगीर बादशाहका शाहजादा खुर्रम अपने पितासे बाग़ी होकर उदयपुरमें शरण चला आया जिसको महाराणा कर्णसिंहजीने बहुत सत्कारसे रक्खा । इनका देहान्त विक्रमी संवत् १६८४ में हुआ था ॥

गीत (१७५)

प्रगट कोट गढ पाड़, साही धरा पलटजै,
सुणै सेषू तणों उवर सीधो ॥
जान कर प्ररणबा जावतां जैतहत,
करण तैं माळवो फतै कीधो ॥ १ ॥
धर नयर बधूंसे तेण रिव धूंधळो,
अमरवत आद सेवरै अणभंग ॥

सिषर असंपत तणों उवर छीनो नहीं,
सुणे सुरताण तो अभनमा संग ॥ २ ॥
सषंड षुरसाण लाहोर पड़ संक सह,
महा मेछां तणों माण मलियो ॥
आपरी धरा उगराह कूंमर अभँग,
बाय नीसाण दिस घरां बलियो ॥ ३ ॥

[गांधण्यां जातिके चारण भल्लाजी कृत]

[नोट—यह गीत महाराणा कर्णसिंहजीके कुंवरपदेके समयका है, जिस समय बादशाही सेनासे युद्ध करके महाराणा अमरसिंहजीने मालवा खोसा था, उस समय कर्णसिंहजीने बड़ी वीरतासे युद्ध किया था उसी समयका वर्णन इस गीतमें है।]

टीका—सेखूका उदर सीधा सुनकर बादशाहकी भूमिको पलटते समय हे वीर कर्णसिंह ! जान बनाकर व्याहनेको जाते हुए तैनें मालवा विजय कर लिया ॥ १ ॥ हे अमरसिंह जीके पुत्र ! तुमने भूमि और नगरोंका नाश कर डाला जिससे सूर्य धुंधला होगया अतः हे राणाके पुत्र ! तुम्हारा मोड़ (मुकुट) अभंग है, हे दूसरे संग्रामसिंहरूपी महाराणाके पुत्र ! तुमने मालवा क्या छीना है मानो १ बादशाहका २ उदर छीन लिया ॥ २ ॥ हे कुंवर कर्णसिंह ! ३ देश सहित खुरासान और लाहोरमें भय घुस गया और म्लेच्छोंका दर्प जाता रहा, इस प्रकार अपनी पृथ्वीका उद्धार करके वह कुमार ध्वजा उडाकर अपने घर पीछा आया ॥ ३ ॥

महाराणा श्रीजगतसिंहजी (बडे)

ये महाराणा वि. सं. १६८४ में मेवाड़की गद्दी बिराजे । इनके समयमें भी दिल्ली आदिके साथ कोई युद्ध नहीं हुआ और इनका राज्यसमय भी बहुत शान्तिसे बीता, दिल्लीके बादशाह शाहजहांने 'जो कुछ समय तक शाहजादेकी हालतमें उदयपुरमें शरण रहा था सुना जाता है कि उसका बदला देनेके लिये महाराणाको कईबार स्नेहसहित दिल्ली बुलाया परन्तु उक्त महाराणानें अपने पितामह महाराणा अमरसिंहजीकी प्रतिज्ञा बनी रखनेकी इच्छासे दिल्ली जानेसे इनकार किया । ये महाराणा बहुत बड़े दानी थे जिनने चारणोंको ८४ ग्राम, सात सो हाथी और छप्पन हजार घोड़े दिये थे इन महाराणाका देहान्त वि. सं. १७०९ में हुआ था ॥

गीत (१७६)

ग्रहतै सत डोर जगा छत्रियां गुर,
बोह मोजां बिध अतुळ बळ ॥
ऊडी जग ऊपर आहाड़ा,
कीरत गूडी तणी कळ ॥ १ ॥

कव कव मुष जैकार करंती,
इळ हूँता गम अगम अड़े ॥
मेर सिषर ऊपर मेवाड़ा,
चंग ज्युंहीं गुणवाण चड़े ॥ २ ॥

करन सुजाब बधे तो करगां,
कल़ हूँता गम अगम किया ॥
चाढे धूमंडल़ चीतोड़ा,
धू धारक जिम ब्रह्माधिया ॥ ३ ॥
जस बाषाण राजपँछ बाजे,
अलष भुयण घण सुणे इम ॥
राणा अवर घणा दिन रहसी,
जुग जुग पंगी चंग जिम ॥ ४ ॥

टीका–इस गीतमें कीर्तिको गुड्डी (पतंग) कल्पना करके उसका सुमेरु शिखरपर पहुंचना कहा है, अभिप्राय यह है कि महाराणा जगतसिंहकी कीर्तिस्वर्गतक जापहुंची । हे क्षत्रियोंमें गुरु (श्रेष्ठ) और बहुत दान करनेवाले अतुलबल-शाली महाराणा जगतसिंह ! तेरी कीर्तिरूपी गुड्डीकी कल़ अर्थात् (पतंग) सतरूपी डोरको लेकर अर्थात् सत्त्व अथवा सत्यका आश्रय करके जगत्के ऊपर उडी ॥ १ ॥ और कवि कविके मुखपर जयशब्द करती हुई अर्थात् कवियोंसे प्रशंसा पाती हुई पृथ्वीसे चलकर अकाशतक जा पहुंची । हे मेवाड़ा ! तेरा गुणवती अर्थात् शौर्यादि गुणोंसे युक्त कीर्ति गुणवती अर्थात् डोरसे लगी हुई गुड्डीके सदृश सुमेरुके शिखर पर जा चढी ॥ २ ॥ हे कर्णसिंहके पुत्र ! अथवा कर्णके सदृश दान करनेवाले ! तेरी कीर्तिरूपी कल़ (पतंग) ने अगम्य

स्थानोंमें भी गमन किया अर्थात् जहां पहुंचना अत्यन्त कठिन है वहां भी जापहुंची । हे आर्यधर्मके धुरंधर चीतोड़ा 'ब्रहमधिया' अर्थात् ब्रह्माकी (धी) पुत्री (सरस्वती) कीर्ति ध्रुवमण्डलपर भी जापहुंची ॥ ३ ॥ हे राणा ! तेरे जसका बखाण गरुड़ शब्द करता है जिसको अलख भुयण अर्थात् अलख जो परमेश्वर उसके भवनमें अथवा अलख (नहीं प्रत्यक्ष हो) लोकमें दोनों ही प्रकारसे (स्वर्गमें) बहुधा सुणते हैं । हे जगतसिंह ! तेरी कीर्ति चंग (पतंग) की भांति जगत्में बहुत दिनोंतक व्याप्त रहेगी ॥ ४ ॥

गीत(१७७)

अवर देस देसांतणां लार कर एकठा,
रैसिया मूगलां दीध राये ॥
हेक सिर नात्रियो नहीं सांगाहरै,
जगै पतसाहरै द्वार जाये ॥ १ ॥

झाड़ पाहाड़ मेवाड़रा झाटके,
जूझ रूपी हुवो षाग झाले ॥
मुगल्लां न गो दिल्लीस थाणा मिलण,
हींदवाणां तणों छात हाले ॥ २ ॥

राण रजपूत बट तणों छल राषियो,
साहसूं नांषियो तोड़ सांधो ॥

कमर बँध छोड़कर जोड़ डँडवत करण,
करनरै नामियो नहीं कांधो ॥ ३ ॥
जगतसी अमरसी उदैसी जेहवो,
छातपत केम कुल राह छाडै ॥
राण सीसोदियो टेक झाले रहै,
अेक पतसाहसूं कंध आडै ॥ ४ ॥

[बारहठ शाखाके चारण गोविन्दजी कृत]

टीका—अन्य राजाओंने देश देशान्तरोंका कर इकट्ठा कर के खिजे हुए मुगलोंको देदिया, परन्तु संग्रामसिंहके पोते जगत्सिंहने बादशाहके द्वारपर जाकर अपना शिर नहीं नमाया ॥ १ ॥ मेवाड़के पहाड़ों पर कई बार बादशाहकी फोजनें आक्रमण किया, वहां हिन्दुओंका छत्रपति खड्ग लेकर कालरूप हो रणमें जूझा, परन्तु दिल्लीपति मुगलके दरबारमें मिलनेको नहीं गया ॥ २ ॥ राणाने क्षत्रियोंके मार्गके १ लिये ही धर्म रक्खा और बादशाहसे सन्धि नहीं की; अन्य नृप कमरसे खड्ग खोलकर हाथ जोड़ कर सलाम करते हैं, परन्तु कर्णसिंहके पुत्रने कन्ध नहीं नमाया ॥ ३ ॥ यह राणा जगत्सिंह उदयसिंह व अमरसिंहके सदृश है अतः अपना कुलधर्म कैसे छोडै; हिन्दूपति शीसोदिया राणा जगत् सिंह अपनी टेक नहीं छोड़ता, सदा बादशाहके साथ अनम्र-भाव रखता है ॥ ४ ॥

दोहा (१७८)

सिंधुर दीधा सातसो, हैंवर छपन हजार ॥
चोरासी सांसण दिया, जगपत जग दातार ॥१॥

[नोट—महाराणा जगतसिंहजीने स्वर्णके कई तुलादान किये और अपनी ऊमरमें इननें चारणोंको ८४ ग्राम, सातसौ हाथी और छप्पन हजार घोड़े दिये इस विषयमें निम्नोक्त दोहा प्रसिद्ध है, और ब्राह्मणोंको दान दिया जिसकी संख्या एक श्लोकमें है ॥]

टीका—जगतमें दातार महाराणा जगतसिंहने सातसो सिन्धुर (हाथी) दिये और छप्पन हजार घोड़े प्रदान किये. और चौरासी पट्टे भूमिदानके कर दिये ॥ १ ॥

गीत (१७९)

घांसां[1] हर नरां पाषरां गरहर,
वसू हुवै नच बळाबेळा[2] ॥
असपत[3] तणो चीत आहाड़ा,
तुळा चढंतां हुवे तुळा ॥ १ ॥
जगपुड़ जगा पाषरां जंगम,
रमहर[4] माथै घात रहै ॥
रुकमां जोष जोषियां राणा,
पड़िया जोषै दिली पहै ॥ २ ॥

महाराणा श्रीजगत्सिंहजीने 'मूंदाड़' के ठाकुर चारण कविवर करणीदानजीका स्वयं सन्मुख पधार कर स्वागत कियाथा जिसका यह निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है।

दोहा।

करनारो जगपत कियो, कीरत काज कुरब्ब।
मन जिण धोखो ले मुआ, साह दिलीस सरब्ब॥

टी०-महाराणा जगत्सिंहने कीर्तिके लिये करणीदानका कुरब अर्थात् सन्मुख आकर विशेषरूपसे वह सत्कार किया कि जिसका दिल्लीके सब बादशाह धोखा लेकरही मरगये।

माण थाण परसण बिय मोकल,
घसंण फोज पड़ घण घणी ॥
घणी चंत्रंग बैसतां धारणँ,
धारंण चूको दिली धणी ॥ ३ ॥
कलमांधर गाहै करनावत,
चायंगुर कनक तुला चड़ियो ॥
भलदाता चेलो तो भारी,
असपत चेलो ऊपड़ियो ॥ ४ ॥

[नोट-इन महाराणाने स्वर्णके कई तुलादान किये हैं जिनकी यादगारमें उदयपुरमें राजमहलोंमें बड़ी पोल और त्रिपोलियाके बीचकी पूर्वकी दीवार पर पत्थरके कई तोरण बने हैं जो एक एक तुलादान पर एक एक तोरण बनाया गया था]

टीका-१ सेनामें मनुष्यों और पाखरोंका शब्द होकर पृथ्वीपर २ चारोंओर नाच होरहा है, हे अहाड़के पति महाराणा ! आपके तुला बैठनेके समय ३ बादशाहका चित्त हलका होगया ॥ १ ॥ हे जगत्सिंह ! तेरे घोड़ोंकी पाखरोंसे पृथ्वीपर ४ शत्रुओंके सिरपर वात रहती है हे महाराणा ! तेरे स्वर्ण आदिके आभूषणोंसे तुलते समय दिल्लीके पतिको आतंक (भय) पड़गया ॥ २ ॥ दूसरे मोकल महाराणा ! तेरे बड़े मान और बडे स्थानके कारण इतनी बडी बडी सेनाएं चलती हैं कि ५ मार्ग पड़गये हैं ६ हे चित्तोड़के पति ! तेरे ७

तराजूमें बैठते समय दिल्लीका पति ८ विचार चूक गया है ॥ ३ ॥ हे कर्णसिंहके पुत्र ९ वीर जगत्सिंह ! तेरे मुसलमानोंकी पृथ्वी दबाकर सोनेकी तुला चढनेसे हे महादानी ! तेरा १० पलड़ा तो भारी होगया और बादशाहका पलड़ा हलका होनेसे ऊंचा होगया ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीराजसिंहजी (बड़े)

महाराणा राजसिंहजी वि० सं १७०९ में गद्दी विराजे। ये महाराणा असाधारण वीर और प्रतापी हुए हैं । अथवा यों कहना चाहिये कि दूसरे महाराणा प्रतापसिंहजी ही थे। बादशाह औरंगजेबके क्रूर और निर्दयी राज्यसमयमें यदि हिन्दुओंके धर्मका रक्षक कोई हुवा है तो केवल महाराणा राजसिंहजी ही थे। ये वीरपुंगव हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये अपना प्राण सदा हथेलीमें ही लिये रहते थे। सुना जाता है जिस समय औरंगजेब हिन्दूधर्मको संसारमेंसे नष्ट कर देनेके लिये निरन्तर चेष्टा कर रहा था, उस समय महाराणा राजसिंहजीने ही काजियोंकी डाढियां मुंडवा कर उनको जबरदस्ती पुराग पढाये थे। इन महागणाका औरंगजेबके साथ द्वेष तो पहिले ही चला आता था परन्तु अन्तमें कई कारण ऐसे होगये कि जिनसे औरंगजेबको बहुत बडी फौज लेकर उदयपुर पर चढ आना पड़ा। इन कारणोंमेंसे एक कारण उस पत्रका भी था जो महाराणाने जिजिया नामक कर लगानेके समय बहुत कठोर विलक्षण शब्दोंमें बादशाहको

लिखा था, जब औरंगजेब उदयपुर पर चढ आया तो उस समय उक्त महाराणाजीने उदयपुरमें घिर कर लड़ना उचित न समझा अतः उदयपुरको खाली करके पश्चिमी पर्वतोंमें चलेगये और वहांपर कई बार बादशाही सेनाको पराजित करके अपनी वीरताका परिचय दिया। और अन्तमें हलदी घाटीके स्थानपर स्वयं औरंगजेबसे बहुत बडी लड़ाई लड़नेका निश्चय करके "ओडां" नामक ग्राममें मुकाम किया और दूसरे दिन बादशाही सेना पर हमला करनेको सवार होना चाहते थे पर कुछ कायर और हरामखोर नीच सेवकोंने अपने मरनेके भयसे भोजनमें विष मिला दिया जिससे वि० सं० १३३७ में उक्त महाराणाका देहान्त होगया। इन महाराणाके कृपापात्र दधिवाड़िया शाखाके चारण आसकरनजी थे जिनको ये महाराणा भाई कहा करते थे ये भी इसी विषसे मारे गये। इन महाराणाने वि० सं० १७१८ में 'राज समुद्र' नामका एक बहुत बडा तालाव बनवाना प्रारंभ किया जो वि० सं० १७३२ में संपूर्ण हुआ इस तालावके बनवानेमें अनुमान ४० लाख रुपये और इसकी प्रतिष्ठाके समय उत्सव और दान पुण्यमें अनुमान ६९ लाख रुपये व्यय हुए थे, यह तालाव उदय पुरसे पचीस मीलकी दूरी पर है॥

गीत(१८०)

परम अंस राजेस धन बंस हींदूपती,
लियो बिसताररो तोम हीलोळ॥

जितूं करबा तणो सोच न कियो जितो,
इन्द्र भरबा तणों कियो आळोच ॥ १ ॥
जगातण राजसामुद्र जग जाणियो,
बयण बाषाणियो येह बारूं ॥
करनहर तमासै हेळ मांटै कियो,
सुरांपत बि मासै बेळ सारूं ॥ २ ॥
बरुण येतो कठा आणसूं बिचारै,
चवै इम तरणसूं मूंह चड़ियो ॥
करणं दरियावरी रीत लष कैलपुर,
पुरंदर भरणरो चीत पड़ियो ॥ ३ ॥
राण महराण अेहो कियो राजसी,
तेण जळ न्हाण दुनियाण तरियो ॥
नरांरै पती मोंटो इसो निबँधियो,
भुयण–पत सुरांरै नीठ भरियो ॥ ४ ॥

टीका–हे परमेश्वरके अंश हिन्दूपति महाराणा राजसिंह ! हे श्रेष्ठ वंशवाले ! तैंनें 'राजसमुद्र' तालाब बनवाकर विस्तारका भी अन्त लेलिया, तैंनें उक्त तालाब बनवानेका विचार इतना नहीं किया जितना इन्द्रने इसे भरनेका सोच किया ॥ १ ॥ महाराणा जगत्सिंहके पुत्रके 'राजसमुद्र' को जब जगतनें जाना तो प्रशंसाके यह वचन कहे कि महाराणा कर्णसिंहके

पोतेने जो तालाव खेलमात्रमें बनवाया है उसको इन्द्र दो मासमें क्योंकर भरेगा ॥ २ ॥ कैलपुरा (महाराणा) की तालाव बनवानेकी रीतिको देखकर इन्द्रने भरनेकी चिन्तामें पड़ कर सूर्यसे कहा कि अब इतना जल कहांसे लाऊंगा, इस तरहं इन्द्रको भरनेका सोच पड़ गया ॥ ३ ॥ हे राजा राजसिंह ! तैंनें ऐसा समुद्र बनाया कि जिसके जलमें दुनियाँ स्नान कर २ के तिर गई । मनुष्योंके पति महाराणाने ऐसा बडा समुद्र बनाया कि जिसको देवताओंके पति इन्द्रने कठिनाईसे भरा ॥ ४ ॥

गीत (१८१)

रचतां इसो राजसर राणा,
लेषो जगरो कवण लहै ॥
अस सूरज बहतो आधंतर,
बेळां पग मांडतो बहै ॥ १ ॥
लागै आभ लोड़ती लहरां,
ऊमडतै दरियाव उतंग ॥
सूरजतणों हींदवा सूरज,
पाणीपंथो कियो पमंग ॥ २ ॥
जगपत राण तणां जाळाहेळ,
जगत कथै जस जुवो जुवो ॥

हैवर दणियर अधर हालतो,
हव सरवर आधार हुवो ॥ ३ ॥
अेको समँद इसो ओल्हरियो,
सात समँद जण हुवा समास ॥
देसी तो आसीस घणा दिन,
सूरज देव तणों सपतास ॥ ४ ॥

टीका–हे महाराणा ! तुमने ' राजसमुद्र ' ऐसा बडा बनाया है कि जिसमें जलका प्रमाण कौन लेसकता है सूर्यका अश्व जो पहिले आकाशमें चलता था सो अब तरंगों पर पैर रखनेवाला होगया ॥ १ ॥ इस उमंडते जलाशयकी उत्तुंग लहरें आकाशको १ चाटता ०, उनमें हे हिन्दुओंके सूर्य ! महाराणा ! सूर्यके अश्वको पानीपंथा (पानीपर चलनेवाला) बना दिया ॥ २ ॥ हे २ सूर्यरूपी महाराणा ! हे जगतसिंहके पुत्र ! जगतमें तेरा यश जुदा जुदा कहते हैं कि सूर्यका ३ घोड़ा पहिले बिना आधार चलता था सो अब यह तेरा सरोवर उसके आधार होगया है ॥ ३ ॥ तैंनें एकही समुद्र ऐसा ४ रचा है कि जिसके सामने सातों समुद्र छोटेसे दीखने लग गये अतः सूर्यदेवका ५ सप्ताश्व घोड़ा तुझे बहुत दिनतक आशीर्वाद देवेगा ॥ ४ ॥

गीत (१८२)

बिध चूका बैद न जाणै बेदन,
औषध लहै न पीड़ अथाह ॥
रात दिवस षटकै उर राजो,
साजो तेण नहीं पतसाह ॥ १ ॥

षैगां चढ चोगान न षेल्है,
बेलै पड़ियो राज बियोग ॥
आंगमणी सीसोद न आवै,
रोद हिये ताइ लागो रोग ॥ २ ॥

मालपुरा सरषा गढ मारे,
राणें पर हंस दीध रिण ॥
भोग सँजोग नहीं रस भीनो,
ओरँग छीनो रोग इण ॥ ३ ॥

धूणैं सीस न धूणैं धजवड़,
मारै रीस सहै मन मांय ॥
जगातणैं असमाध जगावी,
जवन तणां घट हूंत न जाय ॥ ४ ॥

टीका–उपचार भूलेहुए वैद्य वेदना नहीं जानकर वृथा इलाज करते हैं क्यौंकि बादशाहके कलेजेको राणा राजसिंहने रात दिन पीड़ित कर रक्खा है अतः इस रोगपर हकीमोंके नुसखे नहीं चलते ॥ १ ॥ घोड़ोंपर सवारी करके बादशाह चौगानमें नहीं आता और राणाके आतापसे राज्यका वियोग होना सोचकर बरबरता है । सीसोदिया कब्जेमें नहीं आता इसी बिमारीका दुःख मुसलमान शत्रुके शरीरमें छा रहा है ॥ २ ॥ मालपुरा जैसे गढोंको बिगाड़ कर राणाने दिल्लीकी भूमिको अपने हाथमें कर ली, इस व्यथासे ही सर्व सुखोंके संयोगको भोगता हुआ भी 'ओरंगजेब' क्षीण होता जाता है ॥ ३ ॥ तरवार घुमानेका जोश नहीं रहा अतः केवल मस्तक घुमाता है, और अपने अहङ्कारकी खीजको मनही मनमें मारता है । राणा जगत्सिंहजीके पुत्रने ऐसा रोग लगाया है कि, जो यवनके शरीरसे नहीं जावेगा ॥ ४ ॥

गीत (१८३)

दिली ऊपरा राजसी राण चढियो ज दन,
नयर धक मालपुर लंक नांई ॥
धुवांसूं हुवो इंदलोक सह धूंधलो,
तप गयो ठेठ अहराव तांई ॥ १ ॥
सुतन जगतेस दल़ कीध आरँभ इसा,

असुरचा प्राजलै सहर अघला ॥
पुरंदर मंदरां बीच काजल़ पडै,
सहँसफण तणा सिर जलै सघला ॥२॥
हींदवां छात अषियात बातां हुई,
सुज हुवे जैण साषी अरक सोम ॥
धारधर नयण अकुलावियो धुवांसूं,
धराधर कमल़ अकुल़ावियो धोम ॥३॥
आकुल़त ब्याकुल़त चलत नह आंघणैं,
पीव किण भांत आराम पामै ॥
सुकरदे सकरँचा नैण मूंदै सची,
नागणी नाग सिर घड़ा नामै ॥ ४ ॥

टीका–जिस समय महाराणा राजसिंहने दिल्लीके देशपर चढाई की तो मालपुरा नगर लंकाकी भांति जल उठा। धुआंसे सब इन्द्रलोक धुंधला होगया और पाताल देश शेष नागतक तप गया ॥ १ ॥ जगतसिंहके पुत्रने अपनी सेनाका ऐसा आरंभ किया कि जिससे यवन बादशाहके दूरवाले देश भी जलने लग गये। इन्द्रके महलोंमें कज्जल जम गया और शेषके सब फण जलने लग गये ॥ २ ॥ हिन्दुओंके छत्रपतिकी ये बातें प्रसिद्ध होगईं और सूर्य चंद्रमाने भी इसकी साक्षी दी कि धाराधर (इन्द्र) के नयन तो धुआंसे